International Journal of Research
Special Issue for UGC Approved Journal-Hindi Papers
Available at https://edupediapublications.org/journals
e-ISSN: 2348-6848
p-ISSN: 2348-795X
Volume 04 Issue 12
September 2017

मध्यकालीन राजस्थान में रासो साहित्य का ऐतिहासिक विश्लेषण

सुरेन्द्र सिंह
शोधार्थी, इतिहास विभाग,
महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय, रोहतक
ईमेल : bikanerhistory@gmail.com

सारांश

मध्यकालीन राजस्थान में अनेक प्रकार का साहित्य एवं रचनाओं का लेखन किया गया। राजस्थानी सामंती राज्यों ने अपने स्तर पर मुगल सत्ता के समान्तर अपने–अपने राजवंशों के इतिहास को बढ़ावा दिया। रासो साहित्य, ख्यात, रचनाएं, बात साहित्य तथा अन्य प्रकार के साहित्य से राजस्थान के इतिहास लेखन को बढ़ावा दिया गया। इन रचनाओं का लेखन राजस्थानी, मारवाड़ी तथा संस्कृत विधाओं में लिखा गया। ये रचनाएं राजस्थानी क्षेत्रीयवाद की अस्मिता को अधिक समेटे हुए हैं। ये रचनाएं अपने–अपने कुल के आधिपत्य– को वैधानिकता प्राप्त कराने का प्रयास अधिक हैं। क्योंकि इन रचनाओं में राज्य की सत्ता से गैर राजपूती जनजातियों को आत्मसात करने के प्रयास झलकते हैं। जब गैर राजपूत जनधारणा के देवी–देवताओं से जुड़ी किस्से–कहानियों को इनमें प्रमुखता के साथ वर्णित किया गया है। अनेक इतिहासकारों ने इन रचनाओं में राजपूतीकरण की प्रक्रिया (गैर–राजपूत के वर्गों, अनेक मूल्यों को राजपूती रंग में ढालने, स्वीकार करने के प्रयासों – राजपूत मूल्यों का हिस्सा बनाने) को ढूंढने में सफलता प्राप्त की है। वास्तव में रास रचनाएं राज सत्ता की विचारधारा की स्पष्टता को दिखाते हैं। राजपूतों के राजनैतिक गतिविधियों के साथ इनमें गैर–राजपूत समाज के धार्मिक, सांस्कृतिक, मूल्यों, प्रचलित मान्यताओं आदि का भी व्यापकता से उल्लेख हुआ है। अब इतिहासकार इनके द्वारा गैर राजपूत दृष्टिकोण से तात्कालीन व्यवस्था को समझने व जानने के अधिक प्रयासरत हैं यह एक महत्वपूर्ण दृष्टिकोण है जिससे राजपूत व गैर–राजपूतों के सम्बन्धों को नया आयाम प्राप्त हो सकता है।

मुख्य शब्द : *सांस्कृतिक, रास, धार्मिक, राजसत्ता, राजस्थानी, रचनाकार*

e-ISSN: 2348-6848
p-ISSN: 2348-795X
Volume 04 Issue 12
September 2017

भूमिका

मध्यकालीन भारतीय इतिहास में राजस्थान का अपना अलग महत्त्व है। यह क्षेत्र मुहम्मद गौरी के आक्रमणों से लेकर मुगल साम्राजय के पतन तक अपनी महत्ता एवं उपयोगिता के लिए सम्पूर्ण मध्यकाल में महतवपूर्ण विशिष्टता के लिए प्रसिद्ध रहा है। मध्यकाल के राजस्थान का इतिहास निरन्तर हुए युद्धों के कारण अवस्थित एवं अराजकता के दौर से गुजरा है। राजस्थान में सामन्ती शासन का प्रचलन था। जिससे वे अपने सम्मान एवं प्रतिष्ठा के लिए आपस में युद्धरत रहते थे। जिसके कारण इस क्षेत्र में अराजकता व्याप्त थी।

मध्यकालीन राजस्थान में अनेक प्रकार का साहित्य एवं रचनाओं का लेखन किया गया। राजस्थानी सामंती राज्यों ने अपने स्तर पर मुगल सत्ता के समान्तर अपने–अपने राजवंशों के इतिहास को बढ़ावा दिया। रासो साहित्य, ख्यात, रचनाएं, बात साहित्य तथा अन्य प्रकार के साहित्य से राजस्थान के इतिहास लेखन को बढ़ावा दिया गया। इन रचनाओं का लेखन राजस्थानी, मारवाड़ी तथा संस्कृत विधाओं में लिखा गया। ये रचनाएं राजस्थानी क्षेत्रीयवाद की अस्मिता को अधिक समेटे हुए हैं। ये रचनाएं अपने–अपने कुल के आधिपत्य– को वैधानिकता प्राप्त कराने का प्रयास अधिक हैं। क्योंकि इन रचनाओं में राज्य की सत्ता से गैर राजपूती जनजातियों को आत्मसात करने के प्रयास झलकते हैं। जब गैर राजपूत जनधारणा के देवी–देवताओं से जुड़ी किस्से–कहानियों को इनमें प्रमुखता के साथ वर्णित किया गया है।

अनेक इतिहासकारों ने इन रचनाओं में राजपूतीकरण की प्रक्रिया (गैर–राजपूत के वर्गों, अनेक मूल्यों को राजपूती रंग में ढालने, स्वीकार करने के प्रयासों – राजपूत मूल्यों का हिस्सा बनाने) को ढूंढने में सफलता प्राप्त की है। वास्तव में रास रचनाएं राज सत्ता की विचारधारा की स्पष्टता को दिखाते हैं। राजपूतों के राजनैतिक गतिविधियों के साथ इनमें गैर–राजपूत समाज के धार्मिक, सांस्कृतिक, मूल्यों, प्रचलित मान्यताओं आदि का भी व्यापकता से उल्लेख हुआ है। अब इतिहासकार इनके द्वारा गैर राजपूत दृष्टिकोण से तात्कालीन व्यवस्था को

समझने व जानने के अधिक प्रयासरत हैं यह एक महत्वपूर्ण दृष्टिकोण है जिससे राजपूत व गैर–राजपूतों के सम्बन्धों को नया आयाम प्राप्त हो सकता है।

राजस्थान के इतिहास में पृथ्वीराज रासो से रासो साहित्य का आरम्भ माना जाता है। वैसे रासो का प्रमाण पुराणों तथा भरतमुनि के नाट्यशास्त्र में भी मिलता है। लेकिन ऐतिहासिक रूप से पृथ्वीराज रासो को ही पहला रासो या रास माना जाता है। इस प्रकार 12वीं शताब्दी से आरम्भ होकर 17वीं शताब्दी तक राजस्थानी साहित्य में अनेक रासो की रचना हुई जिनकी अपनी ही उपयोगिता है।

ऐतिहासिक दृष्टि के ये रास यद्यपि शुद्ध इतिहास नहीं है परन्तु उसकी मूल कथा वस्तु का आधार ऐतिहासिक अवश्य है। 16वीं शताब्दी में अकबर के समय तक रासो में वर्णित घटनाएं ऐतिहासिक मानी जाने लगी थी और सामान्य विश्वास की वस्तु बन गई थी। आइन–ए–अकबरी में रासो की अनेक घटनाओं का उदाहरण हैं, जो मुसलमानी इतिहास ग्रंथों 'तबकात–ए–नासिरी', 'ताजल–म–आसिर' तथा 14वीं, 15वीं शताब्दी के हम्मीर महाकाव्यों और राजकीय प्रशस्ति में नहीं मिलती, परन्तु अबुल फजल ने उन पर विश्वास न करके, रासो के ढंग पर पृथ्वीराज की कथा लिखी है। उसी के काल में कवि चन्द्रशेखर ने बूंदी नरेश एवं अकबर के मंसबदार सुर्जन हाड़ा के लिए 32 सर्गों का सुर्जनचरित महाकाव्य लिखा। इसके सातवें सर्ग में रासो की तरह ही ब्रह्मा के अग्नि कुण्ड से चौहान वंश की उत्पत्ति की कथा कही गई है और दसवें सर्ग में संयोगिता स्वयंवर की पूरी कथा भी है। पृथ्वीराज के गौरी से इक्कीस बार युद्ध का उल्लेख भी मिलता है। इससे ज्ञात होता है कि अकबर के काल तक ये घअनाएं सर्वप्रचलित थीं तथा ऐतिहासिक समझी जाती थीं। तीसरा वर्ग पौराणिक रास का है। मूलतः रोमांचक शैली तथा धार्मिक शैली का मिश्रण है। ये रास मुख्यतः तीन कथाचक्रों के अन्तर्गत आते हैं – रामकथा संबंधी, कृष्ण कथा संबंधी तथा अन्य स्फुट काव्य। चौथा वर्ग विशुद्ध धार्मिक रचनाओं का है। जिसमें प्रबंधात्मक रूप में उपदेश संग्रह व्रत कथाएं तीर्थवृत एवं मुनियों के जीवन चरित्र कहे गए हैं। इस धारा का महत्त्व केवल परम्परा निर्माण के रूप में है। पांचवा वर्ग, शेष अन्य रचनाओं का है जो उपरोक्त वर्गों के अन्तर्गत नहीं आता। ये रचनाएं लोक जीवन की विशुद्ध प्रतिनिधि है। भले ही काव्य सौन्दर्य की दृष्टि से अधिक

पुष्ट न हों। समष्टि रूप में रास परम्परा एतिहासिक साहित्य की एक विशाल परम्परा है, जो शैली रूप में गठन एवं मौलिक ऐतिहासिक विशेषताओं के कारण अपना विशेष स्थान रखती है।

मध्यकालीन राजस्थान में रास साहित्य की यह परम्परा भी महत्वपूर्ण थी। इस रास साहित्य का राजस्थान के सामाजिक, राजनैतिक, आर्थिक, धार्मिक क्षेत्रों का भी प्रभाव दिखाई देता है। रासो साहित्य जो राजस्थान में लिखा गया है यहां की सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक घटनाओं की एक ऐसी समझ दिखाते हैं जो परम्परागत स्त्रोतों में नहीं झलकती। यह अध्ययन मध्यकालीन राज्स्थान में हुए सुक्ष्म एवं निरन्तर परिवर्तनों को दिखाता है तथा मध्यकालीन राजस्थान को समझने में उपयोगिता प्रकट करता है।

भारतीय इतिहास के अनेक साधनों में साहित्य का स्थान अनोखा है। किसी किसी युग के इतिवृत के लिए साहित्य ही एक मात्र साधन है, किन्तु भारत का कोई ऐसा युग नहीं है जिसमें साहित्य उसके इतिहास के लिए महत्व न रखता हो। देश का सामाजिक एवं सांस्कृतिक इतिहास साहित्य के बगैर अधूरा है। साहित्य समाज का यथार्थ चित्र है। हम उसमें समाज के आदर्श, उसकी मान्यताओं और त्रुटियों, यहां तक कि उसके भविष्य को भी प्रतिबिंबित देख सकते हैं। किसी समय का जो समयक् ज्ञान हमें साहित्य से मिलता है, वह तथाकथित तवारीखों से न कभी मिला है और न मिल सकेगा। साहित्य किसी युग विशेष का सजीव चित्र उपस्थित करता है। किन्तु यथाकथित इतिहास अधिक से अधिक उस युग की भावना को केवल मृतक रूप में एजिप्शियन मम्मी के सदृश दिखाने में समर्थ होता है। रासो साहित्य के माध्यम से पता चलता है कि 12वीं शताब्दी में मुसलमानों के भारत में आगमन से लकर 17वीं शताब्दी तक राजस्थान की राजनैतिक, सामाजिक एवं आर्थिक परिस्थितियों में काफी उतार चढ़ाव देखने को मिलता है।

इन रासो में मध्यकालीन राजस्थान की धार्मिक और नैतिक स्थिति का, सामाजिक स्थिति का, आर्थिक स्थिति का तथा राजनैतिक का अच्छा विवरण प्राप्त होता है। इन रासो के अध्ययन से प्रतीत होता है कि ग्याहरवीं एवं बारहवीं शताब्दी के आस–पास और उससे पूर्व भी अनेक कुरीतियां जैन धर्म में प्रवेश कर चुकी थीं।

जिस प्रकार बौद्ध मत संपत्ति, वैजाभ और मठाधिपत्य के कारण पत्तनोन्मुख हुआ था उसी प्रकार जैन मत भी अधोगति की ओर अग्रसर हो रहा था। चैत्यवासी मठाधिपति बन चुके थे, वे कई राजाओं के गुरु थे। कईयों के यहां उनका अच्छा सम्मान था। जैन मंदिरों के अधिकार में सम्पत्ति दौड़ी चली आ रही थी। चैत्यवासी इस देवद्रव्य का अपने लिए प्रयोग करने लगे थे। मठाधिपति इतने मुर्ख थे कि वे धर्म विषयक प्रश्न करने पर श्रावकों को यह कहकर बहकाने का प्रयत्न करते कि यह तो रहस्य है, इसे समझना तुम्हारे लिए अनावश्यक है। गुरु की आज्ञा पालन ही तुम्हारा परमकर्त्तव्य है। जैन तीर्थों और प्रतिष्ठाओं के रासो में अनेक वर्णन हैं।

इस्लाम का प्रवेश बाहुबली रासकाल के मध्य में रखा जा सकता है। संदेश रासक एक मुसलमान कवि की रचना है। रणमल्लछंद के समय मुसलमान उत्तर भारत को भी जीत चुके थे। समरा रासो उस समय की कृति है जब खिलजी साम्राज्य रामेश्वर तक पहुंच चुका था। तत्कालीन मुसलमान साहित्यकारों से केवल धार्मिक द्विवेष की गंध आती है। किन्तु रास संसार से प्रतीत होता है कि अत्याचार के साथ–साथ सहिष्णुता भी उस समय वर्तमान थी। यह विषय अधिक विस्तार से गवेषणीय है। काल और क्षेत्र के अनुसार हमारे आदर्श बदला करते थे। तेरहवीं शताब्दी में हम इन बातों को ठीक या गलत समझते थे। इसके विषय में हम शालिभद्र सूरि रचित 'बुद्धिरास' से कुछ जानकारी प्राप्त कर सकते हैं। उसके कई बोल लोकप्रिसद्ध थे और कई गुरु उपदेश से लिए गये थे। चोरी और हिंसा अधर्म थे। अनजाने घर में वास, अकेली स्त्री के घर जाना। ऐसे वचन कहना जो निभा न सके, बड़ों को उत्तर देना ये बातें ठीक नहीं थी। चुगली और दूसरों का रहस्योद्घाटन बुरी बातें थीं। किसी से सूद पर ऋण लेकर दूसरे को ब्याज पर देना अनर्थकर समझा जाता था। झूठी साक्षी देना तथा कन्या को धन के लिए बेचना पाप समझा जाता था। मनुष्य का कतर्व्य था कि वह अतिथि का सत्यकार करें और यथाशक्ति दान दे।

सामाजिक जीवन में वर्णव्यवस्था इस समय विद्यमान थी। परन्तु रासो में इसका विशेष वर्णन नहीं है। भरतेश्वर बाहुबलि रास में चक्री शब्द चक्रवर्ती और कुम्हार के अर्थ में प्रयुक्त किया गया है। हरिश्चन्द्र के डोम के घर में कार्य का भी

एक जगह वर्णन है। संघर्ष, भोज, चारण और भाट अकबर के समय में धनी वर्ग की स्तुति आदि से अपना जीविकोपार्जन करते थे। 14वीं शताब्दी के रणमल्ला छंद में हमें राजपूत छटा के दर्शन होते हैं।

जीवन में सुख और दुख का सदा संमिश्रण रहा है। रासंसंसार में हमें सुशांश का कुछ अधिक दर्शन होता है। गृहस्थ जीवन प्रायः सुखी था। किन्तु सपत्निद्वेष से शुन्य नहीं। प्रवास सामान्य सी बात थी। पति को वापस आने में कभी–कभी बहुत समय लग जाता था। इस तरह पति और पत्नि का हमारे साहित्य में अनेक जगह वर्णन है।

रास साहित्य से मध्यकालीन राजस्थान पर भी प्रकाश पड़ता है। देश दरिद्र प्रतीत नहीं होता। कम से कम धार्मिक भावना से प्रेरित होकर अर्थव्यय करने की उसमें प्रयाप्त शक्ति थी। रेल और मोटर के न होने पर भी लोगों ने दूर–दूर जाकर धर्नाजन किया था। समरारास के नायक समरा के पूर्वज पाल्हणपुर के निवासी थे। समरा ने गुजरात में लगम खां की नौकरी की। इसके बाद वह दक्षिण में ग्यासुद्दीन तथा उसके पुत्र का विश्वासपात्र रहा। समरा का बड़ा भाई सहजपाल देवगिरी में वाणिज्य करता था। दूसरा भाई साहणपाल खंवायत नगर में सामुहिक व्यापार करता था। उपदेशरसायन की बहुत सी उपमाएं सामुहिक जीवन से ली गई हैं और तत्कालीन ग्रंथों में समुह यात्रा का बहुत अच्छा वर्णन है।

देश में अनेक नगर थे। अणहिलपाटन, सामोर, जालौर, पाल्हणपुर और कछूली आदि का इन रासो में अच्छा वर्णन है। नगरों के साथ ही गांव भी होते थे। ये सम्भवतः कृषि प्रधान रहे होगें।

यात्राओं के वर्णन से हम वाणिज्य के स्थल मार्गों का अनुमान लगा सकते हैं। अणहिलपाटन से शत्रुंजय जाते समय, सेरीसा, क्षेत्रपाल, धोल्का, पिपलाली और पालिताना पहुंचा। उसके आगे का रास्ता अमरेली, जूना, तेजपुर और उज्जयंत होता हुआ सोमेश्वर देवपत्तन जाता। वहां से लोग द्वीव और अजाहरि जाते। मुगलकाल में गुजरात से लाहौर का मार्ग मेहसाणा, सिंदूपुर, शिपुरी, पाल्हणपुर, सिरोही, बालोर,

विक्रमपुर रोहिठ, सोजत, बिलाड़ा, डोतारण, मेड़ता, नागौर, पडिहारा, महिम, पारणासासर, कसूर और हापाणा होता गुजरता।

इस समय के अनेक रासों से उस समय के राजनीतिक जीवन और राज्य संगठन का भी पता चलता है। कौमासवध में चौहान राज्य की अवनति का एक कारण हमें नजर आता है। पृथ्वीराज के दो व्यसन थे एक आखेट और दूसरा श्रृंगारिच जीवन। दोनों ही राज्य को हानि पहुंचाते थे।

अलाउद्दीन के समय जब प्रायः समस्त उत्तरी भारत मुसलमानों के हाथों में चला गया और मुसलमानी सेनाएं दक्षिण में रामेश्वर और कन्या कुमारी तक पहुंच गई तब समरारास की रचना हुई। 16वीं शताब्दी में (व्सुयुगरसराशि) रास की रचना हुई। उसमें दिखाया गया है कि अनेक कारणों से बीकानेर के मन्त्रि कर्मचन्द को बीकानेर छोड़ना पड़ा। उसने लाहौर जाकर अकबर की सेवा ली। जैन धर्म के विषय में प्रश्न करते हुए कर्मचन्द ने सामान्य रूप से उसके सिद्धान्त बताए और विशेष जिज्ञासा के लिए अपने गुरु खरतरगच्छ के आचार्य श्री जिनचन्द्र सूरि का नाम लिया। अकबर ने सूरि को बुलवा भेजा।

निष्कर्ष

इस प्रकार रास साहित्य में मध्यकालीन राजस्थान की धार्मिक सांस्कृतिक, सामाजिक, आर्थिक तथा राजनीति के बारे में अनेक ऐतिहासिक सामग्री है। इन सबको इकट्ठा करके उस समय के जीवन का पूरा चित्र नहीं तो कुछ झांकी हमारे सामने अवश्य आ सकती है।

संदर्भ सूची

1. जाचीक जीवण कृत *प्रताप रासो,* सं. मोतीलाल गुप्त, गर्वमेन्ट प्रैस, जोधपुर, संवत 2021
2. चन्दरबरदाई कृत *पृथ्वीराज रासो,* भाग – 1 व 2, सं. कविराज मोहनसिंह, राजस्थान विश्व विद्यापीठ, उदयपुर, संवत् 2021
3. *संदेश रासक,* सं. विश्वनाथ त्रिपाठी, हिन्दी ग्रंथरत्नाकर, बम्बई, 1965
4. *बुन्देलखण्ड रासो काव्य,* सं. श्याम बिहारी श्रीवास्तव, आराधना ब्रदर्स, 1993

5. *रास और रासान्वीय काव्य*, सं. दशरथ ओझा, नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी, संवत् 2016
6. राजे सुमन, *रासो काव्यपरम्परा*, रामबाग, कानपुर, 1973
7. अल्लाम, अब्दुलाह, युसूफ अली, *मध्यकालीन भारतीय समाज एवं संस्कृति*, मोतीलाल बनारसी दास, दिल्ली
8. अशरफ, के.एम., *लाइफ एण्ड कंडीशंस ऑफ दि पिपुल ऑफ हिन्दुस्तान*, दिल्ली, 1954
9. उपाध्याय, भगवत शरण, *भारतीय समाज का ऐतिहासिक विश्लेषण*, पीपुल्स पब्लिशींग हाऊस, नई दिल्ली, 1973
10. टॉड कर्नल, *राजस्थान का इतिहास*, भाग–1 व 2, अनुवादक केशव ठाकुर, साहित्यगार चौड़ा रास्ता, जयपुर, 2003
11. ओझा, गोरीशंकर, *मध्यकालीन भारतीय संस्कृति*, हिन्दुस्तानी एकेडमी, संयुक्त प्रदेश, प्रयाग, 1958; राजपूताने का इतिहास, अजमेर, 1937
12. ताराचन्द, *भारतीय संस्कृति पर इसलाम का प्रभाव*, सं. मिश्र सुरेश, ग्रंथशिल्पी, दिल्ली, 2006
13. रशीद ए., *सोसायटी एण्ड कल्चर इन मेडिवल इंडिया*, कलकत्ता, 1969
14. राय चौधरी, एस.सी., *सोशल कलचर एण्ड इक्नॉमिक हिस्ट्री ऑफ इण्डिया*, सुरजीत पब्लिकेशन, दिल्ली, 1978; *सोशल लाईफ इन मेडिवल राजस्थान*, आगर, 1968
15. जी.एन. शर्मा, *राजस्थान के इतिहास के स्त्रोत*, जयपुर, 1973; *राजस्थान का इतिहास*, आगरा, 1973
16. एम.एल. शर्मा, *राजस्थानी भाषा और साहित्य*, इलाहाबाद, वि.सं. 2006
17. महेश्वरी, हीरा लाल, *राजस्थानी साहित्य का इतिहास*, साहित्य अकादमी, दिल्ली, 1980